वीर संवत् २५०२, ज्येष्ठ कृष्ण ११, मंगलवार
दिनांक-२२-०६-१९७६, गाथा-२५ से २७, प्रवचन-१५

परमात्मप्रकाश। २५वीं गाथा। भावार्थ है।

भावार्थ :- यहाँ पर जो सिद्धपरमेष्ठी का व्याख्यान किया है,.... भगवान केवलज्ञान, केवलदर्शन, आनन्दमय है, निराकार है। वे शरीररहित निकल परमात्मा है। **उसी के समान अपना भी स्वरूप है,....** यहाँ तो सिद्धान्त यह है। भगवान आत्मा सिद्ध समान स्वरूपी, उसकी शक्ति, उसका स्वभाव पूर्ण ज्ञान, दर्शन, आनन्द यह उसका स्वभाव है। वह सिद्धस्वरूप स्वयं ही है। **अपना भी स्वरूप है, वही उपादेय (ध्यान करनेयोग्य) है,....** यहाँ तो यह कहना है। देखा! सिद्ध को उपादेय कहा, वह तो निमित्त से, व्यवहार से बात की। और उसे उपादेय माने, इसलिए स्व उपादेय होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें!

भगवान परमात्मस्वरूप ही तेरा आत्मा है। सिद्ध तो एक समय की पर्याय है। यह तो पूरा पिण्ड ही प्रभु सिद्धस्वरूप है। वीतरागमूर्ति अकषायस्वभाव का पिण्ड, अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द और वीर्य से भरपूर पदार्थ, वही उपादेय है। ध्यान करनेयोग्य वह है, ऐसा कहते हैं। है ? आहाहा! सिद्ध का ध्यान करने से... तब कोई कहे कि परन्तु यह सिद्ध का पहले ध्यान करे, फिर यह हो। ऐसा भी नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। स्वयं ही परमात्मस्वरूप है, उसका सीधा आश्रय लेकर और ध्यान में उसे ध्येय बनावे। आहाहा! निर्विकल्प वीतराग परिणति द्वारा वस्तु यह है, उसे ध्येय बनावे अर्थात् उसका ध्यान करे। इसका नाम मोक्ष का मार्ग है। ऐसी बात है।

जो सिद्धालय है, वह देहालय है,.... आहाहा! सिद्धालय है, वह यह देहालय है। **जैसा सिद्धलोक में विराज रहा है,....** जैसे सिद्धलोक में परमात्मा पूर्ण स्वरूप विराजमान है। **वैसा ही हंस (आत्मा) इस घट (देह) में विराजमान है।** आहाहा! भगवान पूर्ण स्वरूप विराजमान आत्मा है। पर्याय में उसे ध्यान में ले। पर्याय है, वह ध्यान है और वस्तु है, वह उसका ध्येय है। आहाहा! ऐसी बातें कठिन पड़े। क्या हो ?

मार्ग तो यह है। साक्षात् भगवान परमात्मस्वरूप है, उसकी भेंट करने के लिये तो निर्विकल्पदशा चाहिए। व्यवहार के विकल्प पहले आवे, इसलिए उसमें से कुछ मदद मिले—ऐसा नहीं है।

वह यही कहा। सीधे यहाँ है। व्यवहार आवे तो मदद मिले। वे भाई कहते थे न? छोटालालजी कहते थे। छोटालाल नहीं? ब्रह्मचारी। पहले ऐसा कहते थे। फिर विचार बदल गया यहाँ। व्यवहार में आवे तो शक्ति मिले कि जिससे अन्दर में जा सके। ऐसा कहते थे। श्रीमद् में एक ऐसा पत्र है। निश्चय में अकेला रूखा लगे तो उसे भक्ति में आना। एक पत्र है। है ख्याल? वह तो व्यवहार की बातें हैं, बापू! यह तो परमानन्द का नाथ पूर्ण है, उसे सीधे ध्येय में लेना। उसे पर की कोई अपेक्षा है ही नहीं।

मुमुक्षु : पात्रता तो अन्दर....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पात्रता यह। तब पात्रता कहलाती है। सम्यग्दर्शन स्व का आश्रय करे, तब उसे पात्रता कहा जाता है। अब उसका सिद्धपना उसमें टिकेगा, ऐसा। यह श्रीमद् ने कहा एकबार। सम्यग्दर्शन होते ही पात्रता होती है। ऐसी बात है, बापू! आहाहा! 'जो नव वाड विशुद्ध से पाले...' आता है न? इन सबकी बातें सब ऐसी चाहे जो हो। बात में बात उसका योगफल तो एक समय में परमात्मा पूर्ण स्वरूप है, उसे रागरहित वीतराग परिणति द्वारा उसे ध्येय करना। बस! वह वस्तु है। बाकी चाहे जो बातें व्यवहारनय की आती हो, वह वस्तु की स्थिति नहीं है। आहाहा!

जो सिद्धालय है, वह देहालय है,.... देह-आलय—स्थान। भगवान अन्दर परमानन्दस्वरूप अखण्ड आनन्द की रस कातली प्रभु है वह तो। आहाहा! गन्ने में जैसे मीठा रस है न? ऐसा वह छिलके से पृथक्। इसी प्रकार राग-द्वेष के विकल्प के छिलकों से प्रभु भिन्न पूर्ण आनन्दरस से भरपूर है। इसे ध्येय बना। आहाहा! यह बात है, भाई!

जैसा सिद्धलोक में विराज रहा है,... जैसा सिद्धलोक में विराज रहा है, वैसा ही हंस (आत्मा) इस घट में विराजमान है। आहाहा! हंस-हंस... हंस-हंसला। राग से भिन्न पड़कर अन्दर में जाये, उसे हंस कहते हैं। जैसे हंस की चोंच में खटाई है। दूध

और पानी इकट्ठे में चोंच डाले तो दूध का कोकडूं हो जाता है और पानी पृथक् पड़ जाता है। इसी प्रकार भगवान हंस है। उसकी वीतराग परिणति द्वारा अन्दर में जाये तो राग से भिन्न पड़ जाये और वीतरागता से अभेद हो। अर्थात् त्रिकाली के साथ अभेद हो। अभेद का अर्थ उस ओर ढल जाये, ऐसा। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

पर्याय जो है निर्विकल्प समाधि वीतरागी परिणति सम्यग्दर्शन-ज्ञान, वह तो द्रव्य की ओर ढलती है। परन्तु इससे द्रव्य में एकमेक हो जाती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! वीतरागी पर्याय को पर्याय में द्रव्यस्वभाव का ज्ञान होता है और वीतरागी पर्याय द्रव्यस्वभाव को ध्येय बनावे। इसलिए वह वीतराग पर्याय अर्थात् मोक्ष का मार्ग, वह कहीं वस्तु में एकमेक नहीं हो जाता तथा वस्तु मोक्षमार्ग की पर्याय में आती नहीं। वस्तु का ज्ञान और सामर्थ्य क्या है, वह सब पर्याय में आता है। आहाहा! ऐसा मार्ग।

इस घट में विराजमान है। भक्ति में नहीं आता? 'जैसो वहाँ, तैसो यहाँ।' भक्ति में कहीं आता है। आहाहा! बात यह है कि उसे भरोसे में बात आनी चाहिए। वर्तमान प्रगट एक समय की पर्याय में अनादि से क्रीड़ा (की है)। और एक समय की पर्याय के अतिरिक्त पूरी वस्तु जो वास्तविक तो जो त्रिकाल है, वह चीज़ है। उसके सन्मुख न देखकर पर्याय के सन्मुख देखकर पर्याय का लक्ष्य तो फिर पर के ऊपर जाता है। आहाहा! समझ में आया? इससे भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप साक्षात् परमात्मस्वरूप ही विराजता है आत्मा। आहाहा! उसे वीतरागी परिणति कहो, निर्विकल्प समाधि कहो, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-दर्शन-ज्ञान-चारित्र की परिणति द्वारा उसकी भेंट कर। आहाहा! ऐसी बात है।

लोगों को तो ऐसा सब लगता है कि व्यवहार से कुछ नहीं? यह कहा, व्यवहार से परम्परा होता है। नहीं आया था? नहीं आया था इसमें? निश्चय से साक्षात् हो और व्यवहार से परम्परा होता है, लो! अरे! प्रभु! क्या है? बापू! आहाहा! यह तो व्यवहारनय के वचन हैं, भाई! राग से परम्परा से स्वआश्रय में जाया जाता है, ऐसा नहीं होता। विवाद करे। प्रभु! क्या करे? आहाहा! अपना जो बड़ा स्वरूप है, महन्त स्वरूप अपना है। आहाहा! उसे पकड़ने के लिये तो विकल्परहित, व्यवहाररहित निर्विकल्प दृष्टि ही काम

आती है। वह उसका स्वीकार कर सकती है। आहाहा! राग की पर्याय उसका स्वीकार नहीं कर सकती। और राग की पर्याय व्यवहार से निश्चय पर्याय होती है और निश्चय पर्याय का ध्येय द्रव्य, ऐसा भी नहीं है। आहाहा!

आगमपद्धति का व्यवहार सुगम (लगता है)। परमार्थवचनिका में आता है न? यह लोग करके मोक्ष का मार्ग मानते हैं। परन्तु अध्यात्म का व्यवहार क्या, इसकी उन्हें खबर नहीं। अध्यात्म का व्यवहार—निर्विकल्पदशा, वह अध्यात्म का व्यवहार है। समझ में आया? निर्विकल्पदशा, वह व्यवहार है और वह पर्याय, द्रव्य को पकड़ती है। यह व्यवहार, निश्चय को पकड़ता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहार हुआ, वही पर्याय। क्योंकि एक वर्तमान क्षण जितनी वह दशा है। इसलिए उसे व्यवहार कहा और त्रिकाल को पकड़े, वह वस्तु निश्चय है। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का। २५ (गाथा) हुई। २६ (गाथा)

गाथा - २६

अत ऊर्ध्वं प्रक्षेपपञ्चक *मन्तर्भूतचतुर्विंशतिसूत्रपर्यन्तं यादृशो व्यक्तिरूपः परमात्मा मुक्तौ तिष्ठति तादृशः शुद्धनिश्चयनयेन शक्तिरूपेण देहेपि तिष्ठतीति कथयन्ति। तद्यथा –

२६) जेहउ णिम्मलु णाणमउ सिद्धिहिं णिवसइ देउ।
तेहउ णिवसइ बंभु परु देहहँ मं करि भेउ।।२६।।

यादृशो निर्मलो ज्ञानमयः सिद्धौ निवसति देवः।
तादृशो निवसति ब्रह्मा परः देहे मा कुरु भेदम्।।२६।।

यादृशः केवलज्ञानादिव्यक्तिरूपः कार्यसमयसारः, निर्मलो भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्ममलरहितः, ज्ञानमयः केवलज्ञानेन निर्वृत्तः केवलज्ञानान्तर्भूतानन्तगुणपरिणतः सिद्धो मुक्तो मुक्तौ निवसति तिष्ठति देवः परमाराध्यः तादृशः पूर्वोक्तलक्षणसदृशः निवसति तिष्ठति ब्रह्मा शुद्धबुद्धैकस्वभावः परमात्मा पर उत्कृष्टः। क्व निवसति। देहे। केन। शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन। कथंभूतेन। शक्तिरूपेण हे प्रभाकरभट्ट भेदं मा कार्षीस्त्वमिति। तथा चोक्तं श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेवैः मोक्षप्राभृते ''णमिएहिं जं णमिज्जइ झाइज्जइ झाइएहिं अणवरयं। थुव्वंतेहिं थुणिज्जइ देहत्थं किं पि तं मुणह।।'' अत्र स एव परमात्मोपादेय इति भावार्थः।।२६।।

इस प्रकार जिसमें तीन तरह के आत्मा का कथन है, ऐसे प्रथम महाधिकार में मुक्ति को प्राप्त हुए सिद्ध परमात्मा के व्याख्यान की मुख्यताकर चौथे स्थल में दश दोहा-सूत्र कहे। आगे पाँच क्षेपक मिले हुए चौबीस दोहों में जैसा प्रगटरूप परमात्मा मुक्ति में है, वैसा ही शुद्धनिश्चयनयकर देह में भी शक्तिरूप है, ऐसा कहते हैं –

ज्यों रहे निर्मल ज्ञानमय भगवान मुक्ति में अहो।
त्यों रहे तन में परम ब्रह्मा अतः भेद नहीं करो।।२६।।

अन्वयार्थ :– [यादृशः] जैसा केवलज्ञानादि प्रगटस्वरूप कार्यसमयसार [निर्मलः] उपाधिरहित भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्मरूप मल से रहित [ज्ञानमयः] केवलज्ञानादि अनंत गुणरूप सिद्धपरमेष्ठी [देवः] देवाधिदेव परम आराध्य [सिद्धौ] मुक्ति में [निवसति] रहता है, [तादृशः] वैसा ही सब लक्षणों सहित [परः ब्रह्मा] परब्रह्म, शुद्ध, बुद्ध, स्वभाव

---

* पाठान्तर :- मन्तर्भूत-मन्तर्भाव

परमात्मा, उत्कृष्ट शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकर शक्तिरूप परमात्मा [देहे] शरीर में [निवसति] तिष्ठता है, इसलिये हे प्रभाकरभट्ट, तूँ [भेदम्] सिद्ध भगवान् में और अपने में भेद [मा कुरु] मत कर। ऐसा ही मोक्षपाहुड़ में श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने भी कहा है ''णमिएहिं'' इत्यादि–इसका यह अभिप्राय है कि जो नमस्कार योग्य महापुरुषों से भी नमस्कार करने योग्य है, स्तुति करने योग्य सत्पुरुषों से स्तुति किया गया है और ध्यान करने योग्य आचार्यपरमेष्ठी वगैरह से भी ध्यान करने योग्य ऐसा जीवनामा पदार्थ इस देह में बसता है, उसको तूँ परमात्मा जान।

भावार्थ :– वही परमात्मा उपादेय है।।२६।।

गाथा - २६ पर प्रवचन

२६। **इस प्रकार जिसमें तीन तरह के आत्मा का कथन है, ऐसे प्रथम महाधिकार में मुक्ति को प्राप्त हुए सिद्ध परमात्मा के व्याख्यान की मुख्यताकर चौथे स्थल में दश दोहा-सूत्र कहे। आगे पाँच क्षेपक मिले हुए चौबीस दोहों में जैसा प्रगटरूप परमात्मा मुक्ति में है,...** लो! **वैसा ही शुद्धनिश्चयनयकर देह में भी शक्तिरूप है,....** आहाहा! शक्ति कहो, सामर्थ्य कहो। आहाहा! पीपर के दाने में शक्तिरूप चौंसठ पहरी शक्ति चरपरारस पूरा-पूरा पड़ा है। आहाहा! उसी प्रकार भगवान शक्तिरूप से परमात्मा ही है। द्रव्यस्वभाव, परमात्मस्वभाव, त्रिकालीस्वभाव, ध्येय में लेनेयोग्य स्वभाव वह तो पूर्णानन्द पूर्ण है। समझ में आया? आहाहा! **वैसा ही शुद्धनिश्चयनयकर देह में भी शक्तिरूप है, ऐसा कहते हैं।** २६ (गाथा)

जेहउ णिम्मलु णाणमउ सिद्धिहिं णिवसइ देउ।
तेहउ णिवसइ बंभु परु देहहँ मं करि भेउ।।२६।।

अन्वयार्थ :- आहाहा! **जैसा केवलज्ञानादि प्रगटस्वरूप कार्यसमयसार....** प्रगट केवलज्ञानादि कार्यसमयसार परमात्मा जो है, **उपाधि रहित भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्मरूप मल से रहित....** आहाहा! **केवलज्ञानादि अनन्त गुणरूप सिद्धपरमेष्ठी देवाधिदेव परम आराध्य मुक्ति में रहता है,....** आहाहा! **वैसा ही सब लक्षणों सहित....** तादृश्य है। **वैसा**

ही सब लक्षणों सहित परमब्रह्म,.... आहाहा! परमब्रह्म। भगवान आत्मा **परमब्रह्म, शुद्ध, बुद्ध, एक स्वभाव परमात्मा,....** वहाँ 'एक' शब्द पड़ा रहा है। क्या कहा?

शुद्ध, बुद्ध फिर एक चाहिए। यह बहुत जगह एक नहीं रखते। वास्तव में तो यह **शुद्ध, बुद्ध, एक स्वरूप...** ऐसा कहना है। पर्याय का भी भेद नहीं। है न?

शुद्ध.... पवित्र **बुद्ध,...** ज्ञानघन। अकेला ज्ञानस्वरूप, वह एकरूप। भेद नहीं। आहाहा! पर्याय का भी जिसमें भेद नहीं। शुद्ध, बुद्ध, पवित्र अकेला ज्ञान—ज्ञायकभाव एक भाव। आहाहा! **परमात्मा, उत्कृष्ट शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकर शक्तिरूप परमात्मा शरीर में तिष्ठता है,....** आहाहा! जैसे मुक्ति में सिद्ध परमात्मा विराजते हैं, वैसा ही यह भगवान आत्मा ऐसे **सब लक्षणों सहित....** देखा! सिद्ध के जितने लक्षण हैं, उन सब लक्षणों से सिद्ध भगवान यहाँ अन्दर विराजते हैं। आहाहा! कैसा काम किया है!

यह परमात्मप्रकाश है। परमात्मप्रकाश पर्याय में हो, वह कार्यपरमात्मा है। परन्तु वस्तु कारणपरमात्मा त्रिकाल स्वयं है। यह वीतरागी भाव है। लोगों को—रागवालों को यह रूखा लगे। कोई ऐसा मानो बाहर में जाये और ऐसा हो तो (ठीक पड़े)। श्रीमद् में एक पत्र आता है। खबर है? ऐसा कि अध्यात्म में बहुत वैसा करने से वैसा हो जाये तो भक्ति में आवे। ऐसा पत्र आता है। इस ओर है। पर की भक्ति में आवे, उससे वह तो अन्तर में से हट गया है और इसलिए उसे अन्दर में जाना सरल पड़े, ऐसा नहीं है। समझ में आया? ऐसा कि वीतरागी भाव तो रूखा है। थोड़ी भक्ति में आवे तो इसका रूखापन जाये। ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : भक्ति स्वयं अशुद्ध है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो राग है। स्व की भक्ति, निर्विकल्पदशा की भक्ति, वह आत्मा की भक्ति है। ऐसी बात, भाई! कठिन काम। क्या हो? भाई! वस्तु ही ऐसी स्थिति है वहाँ। आहाहा! जहाँ परमात्मा स्वयं विराजता है, वहाँ इसे दृष्टि करनी है। और वह दृष्टि निर्विकल्पदृष्टि। आहाहा! वाद-विवाद करे तो कुछ पार आवे, ऐसा नहीं है। व्यवहार से ऐसा होता है, ढींकणा से ऐसा होता है। व्यवहार से परम्परा से होता है। बापू! उसमें उत्साह न कर, भाई!

मुमुक्षु : परम्परा का अर्थ कि उसका अभाव करके होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु यह परम्परा का अर्थ वह इससे होता है, ऐसा कहते हैं। ऐसा कहते हैं न? व्यवहार से उससे परम्परा होता है। इसका अर्थ ऐसा नहीं है, भाई! व्यवहार का अभाव करके निश्चय का आश्रय जब पूर्ण करेगा, तब उसे होगा। अभी भी जितना निश्चय का आश्रय किया है, उतना मार्ग है। पश्चात् भी अधिक आश्रय करेगा तब व्यवहार का भाव छूट जायेगा। इससे उसे परम्परा का आरोप कहा गया है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। ... आहाहा!

और वास्तव में जो व्यवहार कारण है, वह तो असत् कारण है। निश्चय जो वीतराग परिणति द्वारा प्राप्त हो, वह सत् कारण है और उसकी अपेक्षा से व्यवहार है, वह तो असत् है। उपचार कहो, असत् कहो। जिसका भाव आत्मा में है ही नहीं। जिसका अभाव इसमें है। निर्विकल्प समाधि निर्विकल्पदृष्टि में व्यवहार के विकल्प का अभाव है। आहाहा! अब यह विकल्प द्वारा आत्मा को पहुँचा जाये, यह वस्तु है नहीं, भाई! आहाहा! पण्डितजी! ऐसी बात है जरा।

परमात्मा... प्रथम शक्तिरूप... है न? परम उत्कृष्ट, यह मुझे लेना है। उत्कृष्ट शब्द है न? है अन्दर देखो! '**परमात्मा पर उत्कृष्टः**' है? चौथी लाईन है। परमात्मा उत्कृष्ट। आहाहा! अपना भगवान आत्मा का स्वभाव उत्कृष्ट है। **शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकर....** शुद्ध द्रव्य के प्रयोजन की दृष्टि से देखने पर वह उत्कृष्ट परमात्मा शक्तिरूप से साक्षात् है। आहाहा! **शरीर में तिष्ठता है,....** आहाहा! **इसलिए हे प्रभाकर भट्ट! तू सिद्ध भगवान में और अपने में भेद मत कर।** आहाहा! यह सिद्ध भगवान और यह तू, ऐसा न कर। तू स्वयं सिद्ध भगवानस्वरूप ही है। आहाहा! कैसे जँचे? अनादि से पर्याय में पामरता बैठी है न? आहाहा! प्रभुता के पक्ष में गया नहीं न! आहाहा! पूर्ण स्वरूप प्रभु आत्मा के पक्ष में गया नहीं तो वह प्रभुता मेरी इतनी है, यह इसे बैठती नहीं।

मुमुक्षु : टोडरमलजी इनकार करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ?

मुमुक्षु : सिद्ध समान....

पूज्य गुरुदेवश्री : सिद्ध समान तो द्रव्यरूप से है। पर्यायरूप से नहीं, ऐसा वहाँ कहा है। वह सातवें (अधिकार) में पहले यह लिया है। खबर है न? पर्याय जो है, ऐसी पर्याय मेरी वर्तमान (में है, ऐसा नहीं है), वस्तु से सिद्ध समान है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ख्याल है। इसका सातवाँ अध्याय तो बहुत पहले (पढ़ा है)। (संवत्) १९८४ के वर्ष से। शब्द शब्द को... आहाहा! बात गजब की है, भाई!

हे प्रभाकर भट्ट! तू सिद्ध भगवान में और अपने में भेद मत कर। ऐसा ही मोक्षपाहुड़ में श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने भी कहा है। लो! मोक्षपाहुड़ की १०३ गाथा है। १०३। आहा! यह तो बापू! मोक्षमार्ग की बातें हैं, भाई! जेल में से निकलने का रास्ता यह है। 'बन्धनों से मुक्त हो...' नहीं आता? आता है, श्रीमद् में (अमूल्य तत्त्वविचार में आता है)। 'बन्धनों से मुक्त हो...'

मुमुक्षु : वह दिव्य शक्तिमान....

पूज्य गुरुदेवश्री : 'वह दिव्य शक्तिमान जिससे बन्धनों से मुक्त हो।' दिव्य शक्ति भगवान आत्मा, वह राग की एकता की जेल में पड़ा है, उसे अब छोड़। आहाहा! कैद में डाल दिया उसे।

भगवान वीतरागमूर्ति प्रभु को विकल्प और राग के साथ एकता करके जेल में डाला है। उस बन्धन को छोड़ अब, भाई! आहाहा! समझ में आया? पूर्णानन्द का नाथ वह रागरहित ही है। रागरूप और राग के एकरूप कभी हुआ ही नहीं। आहाहा! प्रज्ञाछैनी में आता है न? कि राग और स्वभाव के बीच सांध है। (दोनों) एक हुए ही नहीं। आहाहा! आहाहा! दिगम्बर सन्त और मुनि, उनके विद्वान, उनकी बातें अलग! सनातन मार्ग के सेवक हैं न वे? आहाहा!

कहते हैं कि भगवान पूर्णानन्दस्वरूप से स्वभाव का सत्त्व पड़ा है पूरा। और विकल्प जो है, चाहे तो दया, दान, व्रत, व्यवहाररत्नत्रय, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का हो, वह विकल्प अर्थात् राग और स्वभाव के बीच सांध है। तड़ है। तड़ समझते हो? दरार है, दरार है। निःसन्धि हुए नहीं। ऐसा शब्द है न प्रज्ञाछैनी में? सन्धि है। निःसन्धि हुए नहीं। कलश में है। टीका है। कलश की टीका में है। समझ में आया? आहाहा! टीका में है। टीका में है, हों!

पाठ में इतना है। '**सूक्ष्मेऽन्तः सन्धिबन्धे' अशुद्धत्व—विकाररूप परिणमित है, तो भी परस्पर सन्धि है, निःसन्धि हुए नहीं, दो द्रव्यों का एक द्रव्यरूप हुआ नहीं,...** वस्तु, वस्तु है, वह रागरूप तीन काल में हुई नहीं। आहाहा! **ज्ञानछैनी प्रविष्ट होने का स्थान,...** है वह। विकल्प इस ओर ढलता है और परिणति इस ओर ढलती है। अर्थात् कि बीच में सन्धि है। इसलिए ज्ञान की परिणति उससे हटकर ऐसे मुड़ती है। बीच में सांध है, एक हुए नहीं। इसलिए ज्ञान की परिणति ऐसे ढलने पर दोनों भिन्न पड़ जाते हैं। भिन्न है। आहाहा! अनुपलब्धि शोभे? ऐसा नहीं आता? आहाहा! ऐसा भेदज्ञान करे, उसे प्राप्त न हो, यह शोभता है? ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह तो भाई! बात बहुत सूक्ष्म है। व्यवहार के रसिया को यह बात बैठना बहुत कठिन है। व्यवहार साधन है या नहीं? नहीं तो एकान्त हो जाता है। सम्यक् एकान्त ही है। वस्तु त्रिकाली का आश्रय लेना, वह आश्रय लेनेवाला तो निर्विकल्प पर्याय है। इसलिए उसे सम्यग्दर्शन कहा। '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' भूतार्थ त्रिकाल वस्तु भगवानस्वरूप विराजमान है। उसका आश्रय पर्याय ने लिया, अर्थात् कि पर्याय इस ओर ढली। आहाहा! उस पर्याय को सम्यग्दर्शन कहते हैं। और उस सम्यग्दर्शन का विषय वह त्रिकाली परमात्मास्वरूप है। समझ में आया? लो! मोक्षपाहुड़ की गाथा।

इसका यह अभिप्राय है कि जो नमस्कारयोग्य महापुरुषों से भी नमस्कार करनेयोग्य है,.... क्या कहते हैं? इन्द्र आदि जो नमस्कार करनेयोग्य हैं, वे इन्द्र भी जिसे नमते हैं। अन्दर को। आहाहा! नमस्कार करनेयोग्य गणधर आदि उत्तम पुरुष, वे भी अन्दर वस्तु में नमते हैं। आहाहा! समझ में आया? जो गणधर आदि, छद्मस्थ तीर्थंकर आदि जो वन्दन करनेयोग्य है, नमन करनेयोग्य है, वे जीव अन्दर नमते हैं। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! **स्तुति करनेयोग्य सत्पुरुषों से स्तुति किया गया है,....** आहाहा! गणधरादि जीव को स्तुति करनेयोग्य है। वे गणधर भी इसकी—अन्दर की स्तुति करते हैं। समझ में आया? ऐसा मार्ग है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : एक में कहे, भूतार्थ का आश्रय लेना, दूसरे में कहे, ध्यान करे....

पूज्य गुरुदेवश्री : भूतार्थ का आश्रय, एक ही सिद्धान्त है। फिर व्यवहार आवे,

उसे जाना हुआ कहा, बस। आहाहा! जाननेयोग्य है। आदरनेयोग्य नहीं। व्यवहार आवे, उसे जाननेयोग्य है। ज्ञान तो व्यवहारनय का विषय है न? नय है न? नय विषयी है। उसका विषय यह है। है यह बराबर। परन्तु इससे होता है, यह बराबर नहीं है। आहाहा! ऐसा है, भाई! वस्तु।

स्तुति करनेयोग्य सत्पुरुषों से स्तुति किया गया है,.... आहाहा! जिनकी स्तुति करनेयोग्य, ऐसे गणधर भी स्वयं अन्दर की स्तुति करते हैं, कहते हैं। आहाहा! निश्चयस्तुति। (समयसार की) ३१ गाथा में है। '**णाणसहावाधियं मुणदि आदं**' आहाहा! समझ में आया? **और ध्यान करनेयोग्य आचार्य परमेष्ठी वगैरह से भी ध्यान करनेयोग्य ऐसा जीवनामा पदार्थ इस देह में बसता है,....** यह उसका ध्यान करते हैं। ध्यान करनेयोग्य आचार्य आदि भी आत्मा का ध्यान करते हैं। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य की वाणी गम्भीर और तल में पहुँचा दे, ऐसी है। आहाहा!

भगवान परमात्मस्वरूप शक्ति स्वभाव सामर्थ्यरूप ही परमात्मा है। ऐसे जीव को जो स्तुति करनेयोग्य गणधरादि हैं, वे भी उसकी स्तुति करते हैं, कहते हैं। आहाहा! **ऐसा जीवनामा पदार्थ इस देह में बसता है, उसको तू परमात्मा जान।** यह परमात्मप्रकाश। आहाहा! परमात्मा की पर्याय प्रगटे, परन्तु वह परमात्मा हो तो उसमें से प्रगटे। आहाहा! बहिरात्मा हो, उसमें से प्रगटे? अन्तरात्मा हो, उसमें से प्रगटे? आहाहा! अन्तरात्मा साधक पर्याय है। उसमें से सिद्ध की पर्याय वहाँ से आती है उसमें से? आहाहा! यह परमात्मस्वरूप है, भाई! तुझे बैठना (जँचना) चाहिए। रुचि में इसका पोषाण आना चाहिए। इस चीज़ का पोषाण, पोसाना चाहिए। आहाहा! लाख बात की बात बदल डाल। आहाहा! 'लाख बात की बात (यही) निश्चय उर लाओ, छोड़ी (सकल) जगत द्वंद्व फंद...' द्वैतपना छोड़ दे। यह द्रव्य और पर्याय, यह भी छोड़ दे। अकेला द्रव्य भगवान है, वहाँ तू जा। आहाहा!

ऐसा जीवनामा पदार्थ इस देह में बसता है,.... भगवान विराजता है। आहाहा! बड़ा व्यक्ति आवे तो सामने मिलने जाये। महाभगवान विराजता है, उसे मिलने तो जा वहाँ। आहाहा! समझ में आया? कान्तिभाई! ऐसी बातें हैं, बापू! पागल, गहल कहो,

जो कहो, परन्तु बात तो यह है। **उसको तू परमात्मा जान।** ऐसा कहा न? वे परमात्मा नहीं, तू इस परमात्मा को जान। आहाहा! परम आत्मा, परमस्वरूप, परमस्वरूप, ध्रुवस्वरूप। कायमी परमात्मस्वरूप ही भगवान विराजता है। शक्तिरूप से कहो, स्वभावरूप से कहो, सामर्थ्यरूप से कहो। आहाहा! उसका ध्यान कर। यह तो निश्चय से आया। परन्तु व्यवहार वापस दूसरा होता है या नहीं?

वह दृष्टान्त देते हैं। यह दही बनाते हैं न? बिलौना। एक का आकर्षण। इस ओर खीचें तो इस ओर ढीला रखे। यहाँ से खींचे तो यहाँ ढीला रखे। इसी प्रकार निश्चय के जोर में व्यवहार को ढीला रखे। व्यवहार के जोर में निश्चय को ढीला रखे। अरे! भाई! यह तो ज्ञान कराने की बात है। वहाँ तो ज्ञान निश्चय का करना हो, तब व्यवहार को गौण रखे। व्यवहार का ज्ञान करे तो निश्चय को गौण करे। जानने के लिये बात है। यह आदरने के लिये बात है ही नहीं। आहाहा! इसे आदरने में लगा दे। देखो! व्यवहार को जब मुख्य करना हो तब निश्चय को गौण कर डालना। अरे! निश्चय गौण तीन काल में नहीं होता। समझ में आया? व्यवहार मुख्य हो जाये, वहाँ दृष्टि मिथ्यात्व हो जाती है। आहाहा! ऐसी बात जरा सूक्ष्म पड़े, परन्तु क्या हो? अरूपी निर्विकल्प चीज़ है। आहाहा! विकल्प से भी पता लगे, ऐसी चीज़ नहीं। वह तो निर्विकल्प से पता लगे। आहाहा! पर की ओर का लक्ष्य छोड़ और स्वसन्मुख के लक्ष्य से निर्विकल्प परिणति से उसका ध्यान कर। परमात्मा विराजता है न! आहाहा!

यही परमात्मा उपादेय है। लो! यह भगवान परमात्मा आदरणीय है, पर्याय में आदरणीय यह है। समझ में आया?

गाथा - २७

अथ येन शुद्धात्मना स्वसंवेदनज्ञानचक्षुषावलोकितेन पूर्वकृतकर्माणि नश्यन्ति तं किं न जानासि त्वं हे योगिन्निति कथयन्ति –

२७) जें दिट्ठें तुट्टंति लहु कम्मइँ पुव्व-कियाइँ।
सो परु जाणहि जोइया देहि वसंतु ण काइँ।।२७।।

येन दृष्टेन त्रुटयन्ति लघु कर्माणि पूर्वकृतानि।
तं परं जानासि योगिन् देहे वसन्तं न किम्।।२७।।

जें दिट्ठें तुट्टंति लहु कम्मइं पुव्वकियाइं येन परमात्मना दृष्टेन सदानन्दैकरूप-वीतरागनिर्विकल्पसमाधिलक्षणनिर्मललोचनेनावलोकितेन त्रुटयन्ति शतचूर्णानि भवन्ति लघु शीघ्रम् अन्तर्मुहूर्तेन। कानि। परमात्मनः प्रतिबन्धकानि स्वसंवेद्याभावोपार्जितानि पूर्वकृतकर्माणि सो परु जाणहि जोइया देहि वसंतु ण काइं तं नित्यानन्दैकस्वभावं स्वात्मानं परमोत्कृष्टं किं न जानासि हे योगिन्। कथंभूतमपि। स्वदेहे वसन्तमपीति। अत्र स एवोपादेय इति भावार्थः।।२७।।

आगे जिस शुद्धात्मा को सम्यग्ज्ञान-नेत्र से देखने से पहले उपार्जन किए हुए कर्म नाश हो जाते हैं, उसे हे योगिन्, तू क्यों नहीं पहचानता, ऐसा कहते हैं –

जो पूर्वकृत सब कर्म आतम-दर्श से क्षणमात्र में।
ही नष्ट हों देहस्थ उसको क्यों नहीं तुम जानते?।।२७।।

अन्वयार्थ :- [येन] जिस परमात्मा को [दृष्टेन] सदा आनंदरूप वीतराग निर्विकल्प समाधिस्वरूप निर्मल नेत्रोंकर देखने से [लघु] शीघ्र ही [पूर्वकृतानि] निर्वाण के रोकनेवाले पूर्व उपार्जित [कर्माणि] कर्म [त्रुटयन्ति] चूर्ण हो जाते हैं, अर्थात् सम्यग्ज्ञान के अभाव से (अज्ञान से) जो पहले शुभ-अशुभ कर्म कमाये थे, वे निजस्वरूप के देखने से ही नाश हो जाते हैं, [तं परं] उस सदानंदरूप परमात्मा को [देहं वसन्तं] देह में बसते हुए भी [हे योगिन्] हे योगी [किं न जानासि] तू क्यों नहीं जानता?

भावार्थ :- जिसके जानने से कर्म-कलंक दूर हो जाते हैं, वह आत्मा शरीर में निवास करता हुआ भी देहरूप नहीं होता, उसको तूँ अच्छी तरह पहचान और दूसरे

अनेक प्रपंचों (झगड़ों) को तो जानता है; अपने स्वरूप की तरफ क्यों नहीं देखता ? वह निज स्वरूप ही उपादेय है, अन्य कोई नहीं है।।२७।।

गाथा - २७ पर प्रवचन

आगे जिस शुद्धात्मा को सम्यग्ज्ञान-नेत्र से देखने से... अब ऐसे भगवान को देखने से **पहले उपार्जन किये हुए कर्म नाश हो जाते हैं,...** लो! समझ में आया? पहले तो उसे निर्विकल्प परिणति से पकड़ और निर्विकल्प परिणति से पकड़ने पर पूर्व के कर्म जो हैं, वे भी खिर जायेंगे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पूर्व कर्म के नाश की यह एक विधि है। अपवास करना और यह करना, बापू! यह सब बातें बाहर की है। **शुद्धात्मा को...** अर्थात् परमात्मा को, वस्तु जो है पूर्ण ध्रुव आनन्दस्वरूप, ऐसा जो भगवान स्वयं परमात्मा, इसे **सम्यग्ज्ञान-नेत्र से देखने से...** आहाहा! ज्ञान की निश्चय निर्मल परिणति से उसे देखने पर... आहाहा! **पहले उपार्जन किये हुए...** पहले के कर्म जो उपार्जन किये हों, वे नाश होंगे, निर्जरा होगी, ऐसा कहते हैं। **उसे हे योगिन! तू क्यों नहीं पहचानता,...** हे मुनि! धर्मात्मा! आहाहा! योगी कहकर कहा। ऐसा जो भगवान अन्दर, उसे तू क्यों नहीं जानता?

२७) जें दिट्ठें तुट्टंति लहु कम्मइँ पुव्व-कियाइँ।
सो परु जाणहि जोइया देहि वसंतु ण काइँ।।२७।।

आहाहा! **अन्वयार्थ :- हे योगिन! तू क्यों नहीं पहचानता,... जिस परमात्मा को सदा आनन्दरूप वीतराग निर्विकल्प समाधिस्वरूप निर्मल नेत्रोंकर देखने से...** आहाहा! यह परमात्मा स्वयं द्रव्यस्वभाव त्रिकाल, उसे सदा आनन्दरूप वीतराग निर्विकल्प समाधिस्वरूप निर्मल नेत्रों से देखने से। आहाहा! **सदा आनन्दरूप वीतराग निर्विकल्प समाधि...** शान्ति। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द की परिणति जो प्रगट हुई है... आहाहा! वह **सदा आनन्दरूप वीतराग निर्विकल्प समाधिस्वरूप...** सदा का अर्थ? कि निर्विकल्प जो आनन्द परिणति है, वह आनन्दरूप ही सदा ही है, ऐसा। समझ में आया?

सदा आनन्दरूप वीतराग निर्विकल्प समाधिस्वरूप... आहाहा! जो भगवान को

देखने की परिणति है, वह आनन्दरूप है, कहते हैं। आहाहा! रागरूप, विकल्परूप नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है। भगवान पूर्ण परमात्मा को देखने की दृष्टि जो है परिणति, वह तो सदा आनन्दरूप है। वह भी वीतरागी आनन्दरूप है, वह भी निर्विकल्प अभेद है। ऐसी शान्तिस्वरूप निर्मल नेत्रों... आहाहा! है ? आहाहा! '**येन दृष्टेन**' आहाहा! '**येन दृष्टेन**' '**येन दृष्टेन**' '**येन**' अर्थात् परमात्मा को '**दृष्टेन**' परमानन्दरूपी परिणति वीतरागी निर्विकल्प शान्ति, उससे तू देख। आहाहा! समझ में आया ? दो शब्द में इतना समाहित कर दिया। क्या ?

'**येन दृष्टेन लघु पूर्वकृतानि त्रुटयन्ति**' आहाहा! ऐसा जो भगवान पूर्णानन्दस्वरूप साक्षात् परमात्मस्वरूप द्रव्य है। उसे '**दृष्टेन**' शान्ति अभेद वीतरागी आनन्दरूपी दशा से... आहाहा! ऐसे नेत्र से उसे देख। वह राग से नहीं ज्ञात होगा। वह निर्विकल्प वीतरागी परिणति के नेत्र से ज्ञात होगा। '**येन दृष्टेन**' उसे तू देख। आहाहा! उसकी जाति की निर्विकल्प आनन्द की दशा द्वारा, उस निर्विकल्प आनन्द के नेत्र द्वारा '**दृष्टेन**' भगवान पूर्णानन्द को देख। आहाहा! उसे देखने का उपाय यह है।

सदा आनन्दरूप वीतराग निर्विकल्प समाधिस्वरूप निर्मल नेत्रोंकर... आहाहा! रागरहित निर्विकल्प अभेद वीतराग परिणति आनन्दरूप से उस भगवान को देख। तेरे कर्म टूट जायेंगे। वहाँ कर्म की निर्जरा होगी, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ? यह लोग तो ऐसा कहते हैं, उपवास को तप कहा है और तप को निर्जरा कहा है। एक आर्यिका यह कहती थी। वडोदरा में अपने हैं न वहाँ के 'वेजलका' के हैं वडोदरा में। चन्दुभाई हैं। दूसरे टेलर हैं। उनके साथ एक आर्जिका को बात हुई थी। कहती है कि दूसरी सब बात बराबर, परन्तु उपवास है, वह तप है और तप, वह निर्जरा है, इस बात से तुम इनकार करते हो तो वह खोटी बात है। परन्तु कौन से उपवास ? आहाहा! उसे निर्विकल्प परिणति द्वारा देखना, यह उपवास, उसके समीप में गया, यह उपवास। उससे कर्म छूटते हैं। वहाँ तो सब तप को निर्जरा कहा है। अनशन, ऊनोदर, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, कायक्लेश, प्रतिक्रमण, प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत, स्वाध्याय, ध्यान— सबको तप कहा है और तप से निर्जरा कही है। अरे! भगवान! यह बारह प्रकार के

व्यवहार के विकल्प से बातें की हैं। यह प्रायश्चित्त और विनय, वह भी बाहर का विकल्प है। आहाहा!

अन्तर भगवान को देखने के लिये निर्विकल्प नेत्र को खोल। आहाहा! तब कहे, पहले व्यवहार हो तो निश्चय होता है। और निश्चय से फिर यह ज्ञात होता है। ऐसा है ही नहीं। समझ में आया? यह तो वस्तु है, वहाँ अन्दर विराजता है। उसकी ओर के झुकाव की रागरहित शान्ति और आनन्द के नेत्र द्वारा... आहाहा! आनन्द के नेत्र द्वारा, शान्ति के नेत्र द्वारा आनन्दनाथ को देख उसे। आहाहा! शान्ति के सागर को शान्ति के नेत्र से देख। आहाहा! गिरधरभाई! ऐसी बातें हैं, बापू! आहाहा! अरे! प्रभु! तू कौन है? भाई! आहाहा! भगवान! तेरी महिमा की तुझे खबर नहीं। आहाहा! तेरी महिमा इतनी कि वह निर्विकल्प से ज्ञात हो इतनी। राग से ज्ञात हो, इतनी नहीं। आहाहा! कहो, यह तो भाषा तो सादी है, भाव भले बहुत (गम्भीर हैं)। भाव तो यह है।

यह तो परमात्मा की बात है, भाई! परमात्मा के घर में जाना है। कोर्ट में जाये तो भी वस्त्र-बस्त्र (बढ़िया) पहनकर जाते हैं या नहीं? यह तो परमात्मा के घर में अन्दर जाना है। उसे निर्विकल्प परिणति प्रगट करनी पड़ेगी। आहाहा! बाबूभाई! ऐसा मार्ग है। आहाहा! भगवान है न, भाई! देह-देवल में भगवान विराजता है, प्रभु! देह को न देख, राग को न देख। त्रिकाल को देख! वहाँ निर्विकल्प परिणति बिना त्रिकाल को तू देख नहीं सकेगा। आहाहा! ऐसी बातें हैं। वाडा में तो कहीं सुनायी दे, ऐसा नहीं है। गुलाबचन्दभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो निश्चय की बात हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय अर्थात् सत्य। व्यवहार अर्थात् असत्य। रात्रि में (रात्रिचर्चा में) स्पष्टीकरण नहीं किया था?

मुमुक्षु : कल दोपहर में।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोपहर को उपचार किया था। फिर रात्रि में उसे असत्य कहा। आहाहा! निश्चय सम्यग्दर्शन स्वभाव के आश्रय से हो, वह निश्चय है और साथ में देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग (हो), उसे समकित का आरोप देकर; है तो बन्धभाव,

उसे समकित का आरोप देकर व्यवहार समकित कहा। अर्थात् यह है तो असत्, समकित से असत् दूसरी चीज़ है। उसे समकित का आरोप देना। आहाहा! इसी प्रकार व्यवहारमोक्षमार्ग है, वह निश्चयमोक्षमार्ग से असत्य भिन्न चीज़ है। सत् तो यह है। आहाहा! पूर्णानन्द के नाथ को सत् के साहेबा को पकड़ना, वह निर्विकल्प परिणति, वह सत् है। विकल्प है, उसकी अपेक्षा से असत् है। अथवा विकल्प का भाव वह निर्विकल्प में अभाव है। समझ में आया? आहाहा! रात्रि में कहा था, भाई! थोड़ा। नहीं? आहाहा!

'येन दृष्टेन लघु पूर्वकृतानि' निर्वाण के रोकनेवाले पूर्व उपार्जित कर्म... 'त्रुटयन्ति' चूर्ण हो जाते हैं,... आहाहा! **सम्यग्ज्ञान के अभाव से (अज्ञान से) जो पहले शुभ-अशुभ कर्म कमाये थे,...** अज्ञानभाव से जो पूर्व में शुभ-अशुभभाव थे, वे **निजस्वरूप के देखने से ही नाश हो जाते हैं,...** आहाहा! प्रकाश के पिण्ड को देखते ही अन्धकार का नाश हो जाता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं, भाई! भाषा कैसी है, देखो न! **'जँ दिट्ठँ तुट्टंति लहु कम्मइँ पुव्व-कियाइँ'** आहाहा! है न? **'जँ'** का अर्थ ऐसा किया। संस्कृत छाया है न? **'येन दृष्टेन'** ऐसा संस्कृत का अर्थ किया है। मूल पाठ का नहीं। संस्कृत है, उसका शब्दार्थ किया है। वरना शब्द तो **'जँ दिट्ठँ तुट्टंति लहु कम्मइँ पुव्व-कियाइँ'** जिसे देखने से कर्म नाश हो जाये अल्प काल में, ऐसे कर्म पूर्व में जो किये थे वे। आहाहा!

'सो परु जाणहि' उस परमात्मा को जान। **'जोइया देहि वसंतु ण काइ'** आहाहा! **निज स्वरूप देखने से ही नाश हो जाते हैं, उस सदानन्दरूप परमात्मा को देह में बसते हुए भी...** आहाहा! भगवान तेरे समीप तू स्वयं है न! आहाहा! **देखने से ही नाश हो जाते हैं, उस सदानन्दरूप परमात्मा को देह में बसते हुए भी हे योगी... 'किं न जानासि'** आहाहा! तू वहाँ है, उसे क्यों नहीं जानता? और यह नहीं तुझमें, उसे जानने में रुक गया, कहते हैं। समझ में आया? ऐसा है। व्यवहारियों को यह ऐसा लगे। व्यवहार का लोप करते हैं, ऐसा कहे। बापू! व्यवहार का लोप हो, तब ही निश्चय होता है। केसरलालजी! यह केसर है, केसर। आहाहा! केसर के छींटे डालते हैं। क्या भाषा पाठ है! आहाहा!

'जेँ दिट्ठेँ तुट्टंति लहु कम्मइँ पुव्व-कियाइँ' आहाहा! **'लहु'** अर्थात् शीघ्र। **'सो परु जाणहि'** उस परमात्मा को **'जोइया देहि वसंतु ण काइ'** देह में पड़ा है, उसे तू देखता नहीं। आहाहा! यह तो मन्त्र हैं, भाई! वाद-विवाद करने से तो पार आवे, ऐसा नहीं है। निमित्त से हो, निमित्त से होता है कहो या व्यवहार से होता है, सब एक ही बात है। एक ही बात है, भाई! किसी समय निमित्त से होता है और किसी समय उपादान से होता है, किसी समय व्यवहार से होता है, किसी समय निश्चय से होता है। भाई! ऐसा नहीं, हों! आहाहा! एक ही समय में तू भगवान को सम्यग्ज्ञान नेत्र द्वारा देखने से पूर्व के बाँधे हुए कर्म टूट जायेंगे। दूसरी कोई पद्धति नहीं है। आहाहा! ऐसा है भगवान। **हे योगिन! तू क्यों नहीं जानता?** भावार्थ कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)